Volume-7, No. 1 Feb.-2020, pp. Hin.10-14

जमींदारी उन्मूलन और लोकतांत्रिक भारत का नवनिर्माण

डॉ. (श्रीमती) सज्जन पोसवाल, एसोसिएट प्रोफेसर
एवं विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग,
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झालावाड़ (राजस्थान) भारत।

मानव जाति का इतिहास मानव और भूमि के मध्य सम्बंधो का और उन सम्बंधों में बदलाव का इतिहास रहा है क्योकि मानव अपने अस्तित्व के लिए सदैव भूमि पर ही निर्भर रहा है। ऐसी स्थिति में आधुनिक काल में भारत नहीं बल्कि लगभग सभी विकासशील देशों में भूमि सुधार का सवाल प्रमुख रहा है। भारत में ब्रिटिश शासन के दौरान विकसित किये गये भूमि सम्बंधों, भूराजस्व प्रणालियों तथा उत्पादन व्यवस्था का उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्यवादी हितों को पूरा करना था। ऐसे उद्देश्यों से संचालित कृषि व्यवस्था के परिणाम किसानों के शोषण, उनकी दुर्दशा, ऋणग्रस्तता, गरीबी एवं बार–बार पड़ने वाले अकालों के रूप में सामने आये। उपनिवेशकाल में अंग्रेजों ने भूराजस्व प्रणाली को पूरी तरह अपने हितों के अनुकूल बना दिया था। इस दौर में लगान पैदावर के बजाय भूमि के आकार के आधार पर किया जाने लगा ओर वह भी नकद लिया जाता था। इस प्रणाली से किसानों पर सामन्तों का शिकंजा कसता चला गया। पुरातन परम्पराओं, विचारों, पिछड़ी कृषि तकनीक तथा प्रणाली आदि से किसानों की स्थिति लगातार दयनीय होती गई थी। ऐसी स्थिति में अखिल भारतीय कांग्रेस ने मार्च 1931 में घोषणा की कि किसानों से वसूल किये जाने वाले लगान में कमी की जाएगी। इस प्रकार तीसरे दशक में जैसे–जैसे राष्ट्रीय आंदोलन जनान्दोलन में बदलने लगा वैसे ही भारतीय कृषकों की समस्यायें राष्ट्रीय कांग्रेस के राजनीतिक ऐजेंडे को प्रभावित करने लगी थीं। शुरू में कांग्रेस ने भूमि व्यवस्था की प्रमुख खामियों तथा उसमें विद्यमान अन्याय की ही आलोचना की लेकिन किसान असन्तोष बढ़ने के साथ ही वह भूमि व्यवस्था के पुनर्गठन की बात करने लगी। उसने करोड़ों किसानों और कृषि मजदूरों में यह उम्मीद जगाई की वर्तमान सामन्ती विशेषाधिकारों एवं अन्य असमानताओं पर आधारित भारतीय समाज का पुनर्गठन किया जायेगा जिसका आधार व्यक्ति की गरिमा, प्रगति एवं न्याय जैसे जीवन मूल्य होंगे। 'इसी आधार पर कांग्रेस ने जमींदारी व्यवस्था एवं बिचौलियों की समाप्ति, खेती की हदबंदी, ग्रामीण कर्जो की माफी, भूराजस्व में कमी, सहकारी खेती तथा काश्तकारी सुधारों की माँग को दोहराया। कांग्रेस के 1936 के फैजपुर कृषि कार्यक्रम, 1936 तथा 1946 के चुनाव घोषणा पत्रों में इन प्रस्तावों को दोहराया गया।कांग्रेस को 1937 के प्रान्तीय चुनावों में मिली भारी सफलता में इन कृषि सुधारों की घोषणा की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। सन् 1937 में नेहरू की अध्यक्षता में गठित कांग्रेस की नियोजन समिति ने यह प्रस्ताव पारित किया था कि राज्य और काश्तकार के बीच कोई मध्यस्थ नहीं होना चाहिए। 1937 में कुछ प्रान्तों में बनी कांग्रेस सरकारों ने इन प्रस्तावों के आधार पर काम करने का प्रयास भी किया।[1]

मुख्य शब्द– जमींदारी उन्मूलन, खुदकाश्त, जमीदार

जब नये भारत के संविधान का निर्माण करने का समय आया तो संविधान सभा ने समानता व न्याय पर आधारित समाज की स्थापना के लिए आवश्यक सामाजिक क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त करते हुए मूल अधिकारों नीति निर्देशक तत्वों एवं अन्य विशिष्ट प्रावधान किये। जमींदारी व्यवस्था पर आधारित अमानवीय सामाजिक संबंधों का संविधान निर्माताओं को पूर्ण अहसास था इसलिए इस पर प्रकाश डालते हुए संविधान सभा के सदस्य श्री राजबहादुर ने संविधान सभा में कहा था कि जमींदार खेती के लिए ही नहीं बल्कि घरेलू एवं अन्य कामों के लिए किसानों से अपमान जनक बेगार कराते है। इसके अलावा विवाह तथा अन्य अवसरों पर मानवता को शर्मसार करने वाली 'लागबाग' वसूलते है। जमींदारों की उपस्थिति में किसान घोड़े पर नहीं चढ़ सकते, उनकी औरते चाँदी के गहने नहीं पहन सकतीं। कहीं कहीं तो वे छाता भी नहीं लगा सकते। आजाद भारत में ऐसी अवस्था को कायम रखने का अर्थ है लोकतंत्र और स्वतंत्रता को ही अस्वीकार कर देना।'[2]

कांग्रेस ने अपने संकल्प के अनुसार निर्धारित लक्ष्य की और बढ़ना शुरू किया क्योकि भूमि सुधारों के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पहलू के रूप में जमींदारी प्रथा के उन्मूलन का संबंध सामाजिक क्रान्ति के साथ–साथ आर्थिक विकास से भी था। इसी क्रम मेंदिसंबर 1947

में भूमि सुधारों के मसले पर विचार विमर्श करने के लिए कांग्रेस के अध्यक्ष राजेन्द्र प्रसाद ने दिल्ली में राज्यों के वित्त मंत्रियों की बैठक बुलाई। इस बैठक में मंत्रियों द्वारा की गई सिफारिश के आधार पर श्री प्रसाद ने जे.सी. कुमारप्पा की अध्यक्षता में कृषि सुधार समिति का गठन किया। इस समिति ने देश में प्रचलित कृषि पर आधारित सम्बंधों का पहली बार व्यापक सर्वे किया तथा कृषि सुधारों से जुड़े सभी बड़े मुद्दो के सम्बंध में अपनी रिपोर्ट 1949 में प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट की मुख्य सिफारिशें निम्नलिखित थीं–

1. देश में कृषि नीति के नियामक सिद्धांत निम्न बातों पर आधारित होने चाहिए–

(अ) कृषि व्यवस्था किसान को उसके व्यक्तित्व के विकास का अवसर प्रदान करें

(ब) इसमें एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग के शोषण के लिए कोई स्थान न हो

(स) अधिकतम उत्पादन का लक्ष्य

(द) भूमि सुधारों की योजना व्यावहारिक धरातल पर आधारित हो।

2. भूमि प्रणाली में बदलाव के बिना देश में कृषि उत्पादन और समता में स्थायी सुधार नहीं हो सकता भारतीय कृषि व्यवस्था में बिचौलियों के लिए कोई स्थान नहीं है और भूमि पर खेतिहर का ही कब्जा होना चाहिए।
3. लगातार छः साल से खेती करने वाले का ही उस पर कब्जा हो

इस प्रकार इस समिति की रिपोर्ट आजादी के बाद कांग्रेस के सर्वाधिक रैडिकल नीति दस्तावेजों में से एक थी क्योकि इसकी सिफारिशें खेतिहर को जमीन देने तथा गैर काश्तकारी स्वार्थी तत्वों को समाप्त करने की दिशा में बड़ा कदम थी।[3] केन्द्र सरकार, योजना आयोग एवं राज्य सरकारों ने भूमि सुधारों के व्यापक कार्यक्रम इन्हीं सिफारिशों के आधार पर बनाए थे। आजादी के तुरंत बाद गाँवों में बसने वाली देश की लगभग 80 प्रतिशत जनता के सामाजिक आर्थिक उत्थान की नींव रखने के लिए किये गये जमींदारी उन्मूलन एवं अन्य भूमि सुधारों की आवश्यकता और उद्देश्यों को निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत समझा जा सकता है–

1 भारतीय संविधान में नीहित समतावादी समाज की स्थापना के दर्शन को साकार करने के लिए भूमि सुधारों के अन्तर्गत जमींदारी प्रथा का उन्मूलन आवश्यक था। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 39 के अन्तर्गत नीति निर्देशक तत्वों के माध्यम से यह अपेक्षा की गई थी कि देश में भौतिक संसाधनों के स्वामित्व और नियंत्रण का इस प्रकार वितरण हो कि सामूहिक हित को सर्वोत्तम रूप से साधा जा सके और अर्थव्यवस्था का ऐसा संचालन हो जिससे धन तथा उत्पादन के साधनों का सर्वसाधारण के हितों के विरूद्ध संकेन्द्रण न हों। लेकिन परम्परागत ग्रामीण जीवन में सत्ता एवं प्रतिष्ठा भूस्वामित्व पर आधारित थी। अतः इसे तोड़ने पर ही सामाजिक समानता की स्थापना हो सकती थी। इस प्रकार सामाजिक समानता की स्थापना के लिए आर्थिक साधनों का प्रयोग करते हुए भूमि एवं काश्तकारी सुधारों को अपनाना जरूरी समझा गया।[4]

2 भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार कृषि था अतः भूमि सुधारों का संबंध केवल किसानों से न होकर सम्पूर्ण भारतीय अर्थव्यवस्था से होने के कारण कृषि सुधार सम्पूर्ण भारत के विकास की प्राथमिकता बन गई।

3 उपनिवेशवादी अभिशाप के तौर पर भारत को बेरोजगारी, अर्धबेरोजगारी अनाज की कमी गरीबी पिछड़ापन आदि मिले थे। इससे छुटकारा पाने के लिए एक और भूमि का अधिकाधिक विकेन्द्रीकरण और तकनीकी विकास जरूरी था, वहीं दूसरी और भूमि की संरचना और संबंधो में संस्थागत बदलाव भी आवश्यक था।

4 भूमि सम्बंधों में विद्यमान मध्यस्थ (जमींदार) वर्ग सामाजिक न्याय की प्राप्ति में सबसे बड़ी बाधा था क्योकि भारत में जमीदार वर्ग ही मुख्य रूप से भूस्वामी था जो स्वयं खेती न करके खेतिहर मजदूरों और किसानों से खेती कराता था। इस शोषणकारी व्यवस्था के समापन और कृषि की उन्नति के लिए राज्य और काश्तकार के बीच विद्यमान इस मध्यस्थ वर्ग (जमीदार) का समाप्त होना आवश्यक था और इसके लिए कृषि सुधार आवश्यक थे।

5 आर्थिक न्याय पर अधारित समाज की स्थापना के लिए भूसंसाधनों का संतुलित वितरण करना आवश्यक था। इसीके लिए भूमि की सीमाबन्दी सम्बंधी कानून बनाये गये। खेतिहरों को स्थायी संरक्षण देने, बेदखली के भय से मुक्त करने तथा भूमि धारण सम्बंधी सुरक्षा प्रदान करने के लिए भी भूमि सुधार जरूरी समझे गये।[5]

6 ब्रिटिश शासन के काल से चली आ रही लगान व्यवस्था पूर्णतः किसानों के शोषण और अंग्रेजों के लाभ पर आधारित थी अतः इसे किसान हितोन्मुखी बनाने के लिए कृषि सुधार जरूरी समझे गये। इसका एक नीतिगत पक्ष यह भी था कि यदि कृषि एक जीवन पद्धति है तो जमीन पर जोतदार का ही अधिकार होना चाहिए। इसी उद्देश्य से जोत

की अधिकतम सीमा निर्धारित करने का निर्णय भी लिया गया था।

7 दरअसल भारत को आर्थिक प्रगति के नवीन पथ पर अग्रसर करने के लिए पुरानी संरचना को तोड़ना आवश्यक था, 'मूल्य वृद्धि को रोकने में भी कृषि उत्पादन मददगार हो सकता था।'[6] सामन्तवादी व्यवस्था की समाप्ति, नवीन प्रगतिशील कानून, सीमाबंधी, सहकारी ऋण व्यवस्था एवं सामुदायिक कार्यक्रम आदि इसी दिशा में उठाये गये महत्वपूर्ण कदम थे।

उपर्युक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए भूमि सुधारों की व्यापक प्रक्रिया आजादी के बाद ही शुरू कर दी गई थी। कृषि को स्थानीय जलवायु, मिट्टी, जलस्रोत आदि निर्णायक रूप से प्रभावित करते है। अतः इसके अनुसार ही कृषि विकास की तकनीक का प्रयोग एवं नीतियों का निर्माण करना आवश्यक था। इसी स्थिति में भूमि सुधार को संविधान की राज्य सूची में डाला गया था। इस प्रकार, राज्य सूची का विषय होने के कारण भूमि सुधार की जिम्मेदारी राज्यों पर थी लेकिन संवैधानिक आशाओं के अनुरूप नये समानता और न्याय पर आधारित भारत का निर्माण करने के लिए केन्द्र सरकार ने पहली पंचवर्षीय योजना में ही कृषि सुधारों को प्राथमिकता देते हुए निम्न नीति निर्धारित की जिसे सभी राज्यों ने स्वीकार कर लिया[7]–

जमींदारी उन्मूलन के कार्य को पूरा करना तथा उसके स्थान पर उपयुक्त प्रशासनिक मशीनरी की स्थापना करना, भावी जोतों के अधिग्रहण पर हदबंदी (सीमा बंदी) लागू करना, लगान में कमी तथा काश्तकार को सुरक्षा प्रदान करना, निजी काश्तकारी के पुनर्ग्रहण की सीमा निर्धारित करना, निजी काश्तकारों को भूमि का मालिक बनाने के लिए कदम उठाना, जोतों की चकबंदी तथा भूमि के विखण्डन को रोकने के लिए न्यूनतम जोत निर्धारित करने के लिये कार्यक्रम बनाना, सीमा बंदी से अधिशेष भूमि के अधिग्रहण तथा उसके भूमिहीनों में वितरण के लिए कानून बनाना, सहकारी खेती समितियों को प्रोत्साहन देना, ग्राम योजना से संबंधित शक्तियाँ ग्राम पंचायतों को प्रदान कर सहकारी ग्राम–प्रबंधन को बढ़ावा देना जिसमें भूमि प्रबंध भी शामिल है, निज़ी जोत की अधिकतम सीमा का निर्धारण प्रत्येक राज्य द्वारा किया जाये, भूमि सुधार के लिए केन्द्र में एक संगठन की स्थापना करना।

राष्ट्रीय विकास परिषद् तथा संसद द्वारा अनुमोदन के बाद उपर्युक्त प्रस्ताव भारत की राष्ट्रीय भूमि नीति के रूप में स्वीकार कर लिये गये। केन्द्र सरकार ने इन्हें चरणबद्ध रूप से लागू करने के लिए राज्य सरकारों को निर्देश दिये। इन कृषि सुधारों को दो भागों में बाँटा जा सकता है– पहला, भूमि सुधार जिसमें भू जोतों की सीमा बंदी, चकबन्दी, सहकारी कृषि, भूमिहीनों को अतिरिक्त भूमि का वितरण आदि प्रमुख है। दूसरा–काश्तकारी सुधार जिसमें काश्तकारों को भूमि का मालिक बनाना, उनसे उचित लगान वसूल करना तथा बेदखली से उनकी रक्षा करना शामिल है। इस प्रकार भूमि सुधारों का अर्थ भूमि संबंधों में परिवर्तन से था जिसके द्वारा सरकार, भूस्वामी तथा काश्तकार के बीच संबंधों को पुनर्परिभाषित किया गया। इन संस्थागत बदलावों की प्रक्रिया 60 के दशक तक जारी रही। भारत की विशेषाधिकारों पर आधारित पुरातन समाज व्यवस्था को बदलने में जमींदारी उन्मूलन की निर्णायक भूमिका रही अतः हम यहाँ इसके स्वरूप और प्रभावों का आकलन करेंगे।

सरकार तथा किसान के बीच में जमींदार अथवा जागीरदार के रूप में एक ऐसा वर्ग था जो बिना किसी निवेश के जोतदारों से मनमानी रकम वसूल करता था। यह वर्ग अपने व्यक्तिगत आराम तथा शान–शौकत के लिए किसानों से अतिरिक्त कर वसूल करता था जैसे– हाथी, घोड़े खरीदने अथवा परिवार में जन्म तथा विवाह की खुशियाँ मनाने के लिए। जमींदारों के कारिन्दे बड़ी सख्ती तथा क्रूरता से लगान वसूल करते थे और लगान न चुका पाने अथवा उसमें देरी हो जाने पर उसे जमीन से बेदखल कर दिया जाता था। 'जमींदार वर्ग का देश की लगभग आधी भूमि पर अधिकार था और यह वर्ग ब्रिटिश राज के प्रति वफादार था। जैसे–जैसे राष्ट्रीय आन्दोलन ने गति पकड़ी, कांग्रेस का इस बात पर जोर बढ़ता गया की भारत की मुक्ति में जमींदारी की समाप्ति भी शामिल है।'[8]

इस दिशा में यूपी की विधानसभा ने आजादी से पहले ही कदम उठा लिए थे और आजादी के बाद जमींदारों के विरोध के बावजूद मुख्यमंत्री गोविंद वल्लभ पंत की अध्यक्षता में गठित समिति की सिफारिशों के आधार पर 1951 में विधानसभा में विधेयक पास कर दिया। यह रिपोर्ट अन्य राज्यों के लिए भी नज़ीर बनी और इसके बाद बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान, बंगाल, उड़ीसा, मद्रास, हैदराबाद आदि राज्यों में भी जमींदारी उन्मूलन का सिलसिला शुरू हो गया।[9] दरअसल, संविधान सभा में लम्बी बहसों के दौरान यह तय हो गया था कि मुआवजा देकर राज्यों की विधायकाऐं जमींदारी उन्मूलन विधेयक पारित कर देंगी लेकिन देश के विभिन्न भागों में जमींदारों ने इसका विरोध करना शुरू कर दिया। वे पटना, लखनऊ एवं नई दिल्ली में अपने पक्ष में राजनीतिक लामबंदी करने में जुट गये। उन्होंने सरदार वल्लभभाई पटेल तथा डॉ. राजेन्द्र प्रसाद को बताया कि वे जमींदारी उन्मूलन के खिलाफ नहीं हैं लेकिन यह मुआवजे के साथ उचित

ढंग से होनी चाहिए।[10] अन्ततः उन्होंने न्यायालयों की शरण ली। अलग–अलग श्रेणी के जमींदारों को दिये जाने वाले मुआवजे की राशि में अन्तर होने को पटना उच्च न्यायालय ने 'कानून के समक्ष समानता' के संवैधानिक अधिकार के विरूद्ध माना और बिहार भूमि सुधार कानून को अवैध घोषित कर दिया। जनवरी 1951 में यू.पी. के उच्च न्यायालय की लखनऊ एवं इलाहाबाद शाखा ने भी राज्य के जमींदारी उन्मूलन कानून पर रोक लगाते हुए राज्य द्वारा जमींदारों की सम्पत्ति के अधिग्रहण पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू न्यायालय द्वारा संवैधानिक ढांचे की व्याख्या के अधिकार का सम्मान करते थे लेकिन यदि जमींदारी प्रथा का उन्मूलन नहीं किया जाता तो न केवल सरकार की सम्पूर्ण सामाजिक आर्थिक नीति विफल हो जाती बल्कि यह भारत के करोड़ो किसानों के साथ भी वादा खिलाफी होती[11] अतः नेहरू ने कहा की यदि सामाजिक परिवर्तन के रास्ते में स्वयं संविधान आड़े आता है तो इसके लिए संविधान में आवश्यक बदलाव लाने का यही उपयुक्त समय है।[12] इसके परिणाम स्वरूप जून 1951 में प्रथम संविधान संशोधन विधेयक पारित किया गया और इसके द्वारा संसद ने जमींदारी कानूनों को न्यायालयों के क्षेत्राधिकार से बाहर कर दिया। इसके बावजूद जमींदार डटे रहे। उन्होंने शंकरी प्रसाद बनाम संघ केस के माध्यम से प्रथम संवैधानिक संशोधन को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी। इस मुकदमे में शीर्ष न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश श्री पतंजलि शास्त्री ने स्पष्ट कहा कि 'जमींदारी उन्मूलन के मार्ग में आने वाली सभी समस्याओं को प्रथम संशोधन ने हल कर दिया है।'इस प्रकार न्यायालय द्वारा प्रथम संशोधन को दी गई चुनौती को अस्वीकार करने के साथ ही सदियों से प्रचलित वर्चस्वशाली जमींदारी व्यवस्था समाप्त हो गई और आजाद भारत में समानता और न्याय पर आधारित लोकतांत्रिक समाज के निर्माण की एक प्रमुख बाधा के दूर होने से किसानों की मुक्ति और प्रगति का मार्ग प्रशस्त हुआ।

जमींदारी उन्मूलन की इस प्रक्रिया को 50–60 के दशक में लगभग सारे देश में पूरा कर लिया गया। जमींदारों की कानूनी मान्यता की समाप्ति के साथ ही राज्य तथा किसानों के बीच का मध्यस्थ वर्ग समाप्त हो गया और किसान सीधे राज्य के सम्पर्क में आ गये जिससे भारतीय कृषि और किसान की प्रगति का मार्ग खुल गया।जमींदारी उन्मूलन द्वारा सत्ता एवं शक्ति के परम्परागत केन्द्रों को ताड़ने की कोशिश की गई और प्रशासनिक नियंत्रण अब राज्य के हाथों में आ गया लेकिन जमींदारी उन्मूलन सम्बंधी कानूनों में विद्यमान खामियों के कारण भूमि सुधार के वांछित लक्ष्य प्राप्त नहीं हुए। 1949 की कांग्रेस समिति की सिफारिशों के बावजूद 'खुदकाश्त' की कोई स्पष्ट परिभाषा नहीं दी गई जिससे यह मुद्दा राज्यों की विधान सभाओं में बहस का कारण बना। खुदकाश्त के लिए शारीरिक श्रम तथा वर्ष पर्यन्त कृषि भूमि पर उपस्थिति को अनिवार्य नहीं किया गया और ना ही निरीक्षण की बाध्यता रखी गई। इसका परिणाम यह हुआ कि यू.पी. जैसे राज्य में 'खुदकाश्त' के नाम पर भूमि पर जमींदारों का कब्जा बना रहा और वे मजदूरों से काम कराते रहे और परम्परागत जमींदार वर्ग नवीन पूँजीपति वर्ग के रूप में उभरा। इसके अलावा भूमि सुधार कानूनों के बनाने की प्रक्रिया के साथ ही 'खुदकाश्त' दर्शाने के लिए जमींदारों ने बड़े पैमाने पर काश्तकोरों को बेदखल करना शुरू कर दिया।[13]कुछ राज्यों ने इन चुनौतियों का सफलतापूर्वक सामना किया। सन् 1959 में केरल की साम्यवादी सरकार ने बेदखली को गैर कानूनी घोषित कर दिया तथा बँटाईदारों को भूमि प्राप्त करने के अधिकार दिये। केरल में खुदकाश्त भूमि की सीमा दस एकड़ तय कर दी गई। बंगाल की संयुक्त मोर्चा सरकार ने भी 1967 में बेदखली पर प्रतिबंध लगा दिया और बेनामी भूमि का खेतिहर मजदूरों में वितरण कर दिया लेकिन इन राज्यों के अलावा सभी राज्यों में भूमि सुधारों के संबंध में सरकारों ने भूस्वामियों तथा जमींदारों के प्रति समझौतावादी नीति अपनाई।

इन कमियों के बावजूद जमींदारी उन्मूलन कृषि सुधार की दिशा में एक प्रगतिशील कदम था। भूमि सुधार के अलावा यह समाज सुधार भी था क्योंकि पहली बार कारीगरों, मजदूरों एवं किसानों को बिचौलियों से मुक्ति मिली और गाँव की साझी भूमि जैसे–आबादी भूमि, चारागाह, जंगल, तालाब, झील आदि पर जमींदारों का नियंत्रण समाप्त हो गया। इन भूमि संसाधनों पर ग्राम पंचायत का अधिकार हो गया जो जनता द्वारा चुना गया निकाय था। इस प्रकार जमींदारी व्यवस्था का उन्मूलन नव स्वतंत्र भारत के सामाजिक एवं आर्थिक नवनिर्माण की दिशा में एक क्रान्तिकारी कदम था। जिसने भारत में लोकतांत्रिक एवं लोक कल्याणकारी समाज के निर्माण की आधारशिला रखी। जमींदारी व्यवस्था की समाप्ति ने ही भूमि सुधार सम्बंधी अन्य उपायों जैसे जोतों की सीमाबंधी, काश्तकारी सुधार, चकबन्दी एवं सहकारी खेती आदि को लागू करने का मार्ग प्रशस्त किया। इन संगठित उपायों ने उपनिवेशकालीन जड़ सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था को प्रगतिशील लोकतांत्रिक व्यवस्था में रूपान्तरित करने की आधारशीला रखी। इन उपायों में क्रियान्वयन सम्बंधी कमजोरियों के कारण निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति

में भले ही अपेक्षित परिणाम हासिल नहीं हुए हों लेकिन इसने कृषि सम्बंधों की जड़ता एवं असमानता पर निर्णायक आघात किया। नेहरू ने उचित ही कहा था कि जमींदारी उन्मूलन समस्त प्रकार की प्रगति की पहली आवश्यक शर्त और मौलिक परिवर्तन का प्रतीक है।[14] वास्तव में जमींदारी उन्मूलन चिरकालीन विशिष्ठ वर्गीय स्तंभों को ढहाकार सामाजिक आर्थिक धरातल को समतल करने का भागीरथी प्रयास साबित हुआ।

दरअसल, कठिन संघर्ष के बाद मिली आजादी से नये भारत का निर्माण करने वाले राष्ट्रीय नायको के इरादे और अन्तश्चेतना लोकतंत्र एवं लोकहित के विचार से संचालित थे उनकी भूमिका उस रॉबिनहुड के समान थी जिसने जमींदारों से सम्पत्ति छीनकर उसे गरीब किसानों में वितरित किया। जमींदारी उन्मूलन तथा भूमि सुधार सम्बंधी सभी उपाय संविधान में निहित न्याय एवं समानता की स्थापना के लक्ष्य की और एक बड़ा और निर्णायक कदम थे लेकिन सन् 1991 में अपनाई गई आर्थिक उदारीकरण की नीति ने भारतीय अर्थ व्यवस्था के नीहित लक्ष्यों को ही बदल दिया। इसके अन्तर्गत अपनाई गई सार्वजनिक क्षेत्र के उपनिवेशीकरण, अधिकतम निजीकरण, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश एवं स्वतंत्र बाजार की नीति ने जमींदारी उन्मूलन एवं भूमि सुधारों के मूल निहितार्थों को ही अप्रासंगिक बना दिया है। आजादी के तुरंत बाद खाद्य संकट के दौर में नेहरू ने कहा था कि हमारा मकसद सामाजिक न्याय है और सामाजिक न्याय के बिना उत्पादन वृद्धि अनुचित, अस्थिर एवं आधार हीन साबित होगी।[15] लेकिन 'आर्थिक उदारीकरण के बाद के दशकों में भारत में असीमित लाभ के उद्देश्य से संचालित कॉर्पोरेट की शक्ति को बढ़ाया है। सार्वजनिक नीति एवं लोकतांत्रिक संस्थाओं पर कॉर्पोरेट हितों का वर्चस्व बढ़ा है। जिसकी नीतिगत प्राथमिकताओं में वंचितों के हित उपेक्षित हैं।'[16] उदारीकरण के परिणामस्वरूप भारत में सम्पत्ति का केन्द्रीकरण और आर्थिक असमानता बढ़ी। इसने भारतीय संविधान में नीहित न्याय एवं समानता पर आधारित समाज की स्थापना के लक्ष्य से राज्य को भ्रमित किया। इसके परिणाम स्वरूप जमींदारी उन्मूलन जैसे उपाय भी निष्प्रभावी जान पड़ते है। ऐसी स्थिति में भारतीय संविधान में जमींदारी उन्मूलन, लोक कल्याणकारी राज्य, न्याय समानता एवं सम्पत्ति सम्बंधी प्रावधानों का पुनर्मूल्यांकन कर यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि आर्थिक प्रगति के लिए अपनाया गया आर्थिक उदारीकरण कहीं हमारे संवैधानिक मूल्यों एवं नीहितार्थों के ही विरूद्ध तो नहीं है।

संदर्भः

1. एच.डी. मालवीय, लैन्ड रिफोर्म्स इन इण्डिया, ऑल इण्डिया कांग्रेस कमेटी, नई दिल्ली, 1954, पृष्ठ 17–18,57,62
2. कॉस्टिटुयेन्ट एसेम्बली डिबेट्स, बुक 2, वॉल्यूम VII, रिप्रिन्ट 2014, 22 नवम्बर 1948, पृष्ठ 502
3. पी.सी. जोशी, लैन्ड रिफोर्म्स इन इंडिया, ए.आर. देसाई (सम्पा.) रूरल सोशियोलोजी इन इंडिया, पापुलर प्रकाशन बॉम्बे, रिप्रिन्ट 2006, पृष्ठ 452
4. फ्रेंकाइन आर फ्रेंकेल, इंडियाज पॉलिटीकल इकोनोमी (1947–2004) ऑक्सफोर्ड, 2006 पृष्ठ 19–20
5. पी. सी. जोशी, उपर्युक्त, पृष्ठ 441–442
6. श्रीमन नारायण, भारतीय संयोजन में नई दिशायें, शिवलाल अग्रवाल, आगरा, 1963, पृष्ठ 50
7. एच. डी. मालवीय, उपर्युक्त, 431–32
8. गुन्नार मिरडल, एशियन ड्रामा, भाग–2, पेंगुइन बुक्स, ब्रिटेन, 1968, पृष्ठ 1306
9. एच. डी. मालवीय, उपर्युक्त, पृष्ठ 106, 108
10. ग्रेनविले ऑस्टिन, वर्किंग ऑफ़ ऐ डेमोक्रेटिक कॉस्टीट्यूशन, ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1999, पृष्ठ 75
11. जवाहर लाल नेहरू, लेटर्स टू चीफ मिनिस्टर्स, खण्ड 2, 1950–1952, 21 मार्च 1951, जे.एन.एम.एफ. दिल्ली, 1968, पृष्ठ 363
12. उपर्युक्त, 1 फरवरी 1951, पृष्ठ 325
13. ए. एम. खुसरो, ऑन लैंड रिफॉर्म्स, ए.आर. देसाई (सम्पा.) रूरल सॉशियोलॉजी इन इण्डिया, पापुलर प्रकाशन, बॉम्बे, रिप्रिन्ट 2006, पृष्ठ 441–443, गुन्नार मिरडल, उपर्युक्त, पृष्ठ 1307
14. माधव खोसला (सम्पा.), लेटर्स फॉर अ नेशन फ्रॉम जवाहरलाल नेहरू टू हिज चीफ मिनिस्टर्स 1947–1963 एलनलेन, पैंगुइन बुक्स, 2014, 16 जून 1952, पृष्ठ 162
15. ज्याँ द्रीज एवं अमर्त्यसेन, एन अनसर्टेनग्लोरीः इंडिया एंड इट्स कॉन्ट्राडिक्शन्स, पेंगुइन बुक्स, 2014, पृष्ठ 239